हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज़

सुमनाञ्जलि

लेखक

श्री अनूप शर्मा

एम्० ए०, एल्० टी०

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

पं० संकटाप्रसाद वाजपेयी बी० ए०

पं० संकटाप्रसादजी वाजपेयी बी० ए०

रईस, लखीमपुर-खीरीके

कर-कमलोंमें

उनके एक अनुचरका

यत्किञ्चित्

भूमिका

साहित्यमें साधारणतया भी अनेकानेक विभिन्न धाराएँ सर्वदा एक ही साथ बहती रहती हैं, परन्तु परिवर्तन-कालमें तो उस प्रवाहमें बहनेवाली ऐसी पृथक् पृथक् धाराओंकी संख्याएँ ही नहीं बढ़तीं, किन्तु ऐसे सन्धि-युगमें हमें परस्पर-विभिन्न प्रभावों और आदर्शोंका अनूठा सम्मिश्रण तथा पृथक् पृथक् कलाओंका अविश्वसनीय सम्मिलन भी देखनेको मिलता है। यही कारण है कि यद्यपि ऐसे सन्धि-युगके साहित्यमें प्रायः विश्व-काव्यका अभाव ही रहता है, किन्तु फिर भी उस कालका साहित्य बहुत ही विविध, विभिन्न प्रकारका होता है; उसमें एक अनोखा वैचित्र्य हमें देखनेको मिलता है, और उसी वैचित्र्यमें हमें भूत और भविष्यके आदर्शोंके समन्वयकी अनुभूति होती है। वर्तमान युग राजनीतिक दृष्टिसे ही नहीं परन्तु सांस्कृतिक विकासकी वस्तु-स्थितिसे भी भारतके लिए एक क्रान्तिकारी परिवर्तन-काल है। आज हमें हिन्दी साहित्यमें रीति-कालकी याद दिलानेवाली श्रृंगारिक कविताएँ और बीसवीं सदीके उत्कट स्वरूपको व्यक्त कर देनेवाली क्रान्तिकारी रचनाएँ एक साथ ही देख पड़ती हैं।

और यह सम्मिश्रण व्यक्तित्व और आदर्शोंमें भी पाया जाता है, एवं उन्हींके द्वारा यह कला और कल्पनाके रूपमें प्रस्फुटित होता है। किसी फ्रेंच समालोचकने ठीक ही कहा है—“ Art is life seen through a tempera-

ment" और सन्धि-युगका कवि तो अशांति और व्याकुलतासे तड़पता है। प्राचीन और नए आदर्शोंका संघर्ष देखकर वह हक्काबक्का-सा रह जाता है; सामंजस्य-विधानकी लालसा उसमें जाग्रत होती है और अपनी कलाके लिए जाने या अनजाने वह स्वयं ही आदर्श चुन लेता है। साहित्यमें आत्म-केन्द्रता और आत्म-सर्वस्वता स्थापित करनेके लिए वह युग-धर्म जानने और जीवनका लक्ष्य ढूँढ निकालनेके लिए प्रयत्नशील होता है, और उस कविकी कृतियोंमें देश और कालका पूर्ण प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। साहित्य और मनुष्यके जीवनमें सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, और कवि तत्कालीन विचार-धाराओं तथा सांस्कृतिक प्रगतियोंको समझने और समझानेका प्रयत्न करता है। और जब कविकी तल्लीनता बढ़ने लगती है तब तो वह प्राचीन विगत-कालीन घटनाओं एवं मृत व्यक्तियोंके चरित्रमें भी जाने-अनजाने समकालीन आदर्शोंका आभास देखने लगता है,—उन्हें भी वर्तमान आदर्शोंके रंगमें रँगने लगता है।

'सिद्धार्थ' महाकाव्यका लेखक भी ऐसे ही परिवर्तन-युगका कवि है। वह आज अपनी कविताओंका 'सुमनांजलि' शीर्षक यह संग्रह लेकर पाठकोंके सम्मुख आ रहा है। बचपनमें अपने ग्रामकी 'केशव-शाला' में बैठकर उसने केशवकी कृतियोंका अध्ययन किया, रामचन्द्रिका पढ़ी, कवि-प्रियाको सराहा और रसिक-प्रियाको प्यार किया। यद्यपि बादमें उसने काव्य-शास्त्रसम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थोंका अध्ययन भी किया फिर भी कविकी काव्य-कलापर हमें केशवकी ही अमिट छाप देख पड़ती है। भाव और सरसताके लिए उसको महाकवि देवने अपनी और आकृष्ट किया है, और उन्हींके प्रभावसे कवि घनाक्षरीपर इतना मुग्ध हो गया है कि इस संग्रहकी सारी कविताएँ (अंतिम एक कविताको छोड़कर) उसने कवित्तोंमें ही लिखी है। उसने रत्नाकरकी सरस ध्वनि सुनी और उन्हें

"आवत गिरा है रतनाकर निवाजनको
आनँद-तरंग अंग थहरति आवे है।...
लहरति आवे दग-कोरनि कृपाकी कानि
मंद मुसकानि-घटा घहरति आवे है।"

कहते सुनकर स्वयं गुनगुनाने लगा—

"ध्यान धरते ही शारदाके पद-पंकजका
बंद करते ही लोल लोचन-पटलके।

खुल गया ऐसा समालोक स्वप्नलोक-तुल्य

देख रमणीयता अनूप-नेत्र छलके। " आदि आदि।

परन्तु प्रस्तुत लेखक प्रधानतया खड़ी बोलीका कवि है। उसने अपने विद्यार्थी-जीवनमें मैथिलीशरणजी गुप्त तथा हरिऔधकी कृतियाँ पढ़ी थीं; और उसके कवि-जीवनके बाल्य-कालमें 'सनेहीजी' ने उसको बहुत सहायता दी थी और प्रोत्साहित भी किया था। संक्षेपमें यही है वह मानसिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि जिसके आधारपर अनूपकी प्रतिभा और काव्य-रचना प्रस्फुटित हुई।

अनूपजी मुख्यतः कल्पना-प्रधान कवि हैं और उनकी प्रतिभा, कल्पना एवं गहरी भावुकताका सहारा लेकर, इस संग्रहमें बहुत ही सुन्दर, रंग-बिरंगे, विस्तृत चित्र पाठकोंके सम्मुख समुपस्थित करनेमें समर्थ हुई है। ये चित्र बहुत ही स्पष्ट और उच्च कोटिके हैं। कविने उनको सम्पूर्ण बनाने और उनकी छोटीसे छोटी बातोंको चित्रित करनेमें अपना सारा कला-कौशल व्यय किया है। संसारकी अपूर्णता तथा दैनिक जीवनमें चमत्कारके अभावका कविको प्रतिपदपर भान होता है; और इस अपूर्णताको पूरा करनेके लिए उसने काव्यमें कल्पनाका सहारा लिया है।

अनूपजीकी कल्पनाएँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं; कईमें हमें एक अनूठा चमत्कार देख पड़ता है। कुछ कविताओंमें उन्होंने अपनी कल्पनासे बहुत ही विशाल एवं भव्य स्वरूप पाठकोंके सामने खड़े कर दिये हैं। उनको देखते ही बन आता है। कविने 'विराट-भ्रमण' कवितामें एक ऐसा ही कल्पना-चित्र हमारे सम्मुख चित्रित कर दिया है। महाशक्तिका चार घोड़ोंवाला रथ आसमानसे उतर रहा है। कवि नीचेसे उस रथको देखकर कहता है—

" एक सफ चार जुते आते अति लाघवसे

नालें वह सोलह कलानिधि द्वितीयाके।

उत्थित कशा है पाकशासन-शरासनकी

चारों पुच्छ शम्पा हिम छबि रमणीयाके

वक्र किरणोंकी बनी ललित लगाम लोल " इत्यादि।

चारों घोड़ोंके पाँवोंकी नालें सोलह दूजके चन्द्रमाके समान, उठा हुआ टेढ़ा कोड़ा इन्द्र-धनुषके समान, घोड़ोंकी सफेद पूँछें विद्युल्लताके समान और लगाम टेढ़ी किरणोंकी बनी हुई रज्जुकी-सी देख पड़ती थी।

"मध्यमें पुछारे तारे छोड़ता चला यों रथ
प्रस्तुत अनूप दृश्य ऐसा छबिवान था।
विद्युत थी किन्तु मेघ-मंडल नहीं था वहाँ
तारे थे परन्तु न कहींपै आसमान था।"

अथवा,

"रजनी-प्रकाश-अंक-ओस-बुंद-मध्य क्या ही
रजनी-प्रकाशका प्रकाश बिखरा हुआ।
सिंधुमें असंख्य बारि-बुंद लखे होंगे किन्तु
देखिए समुद्र एक बुंदमें भरा हुआ।"

और ऐसे एक नहीं अनेकों चित्र हमें इस काव्य-संग्रहमें मिलते हैं। प्रायः प्रत्येक कवितामें कहीं न कहीं हमें एकाध कल्पना-चित्र मिले बिना नहीं रहता। 'पुष्प-लेखा' में तो केवल प्राकृतिक पवित्रताका ही अनूठा चित्रण किया है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कविमें कल्पनाके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। उसमें कल्पना है, और बहुत अधिक मात्रामें; परन्तु उसके साथ ही उसमें भावुकता भी है। भावुकताके बिना यह सम्भव नहीं कि कोई कवि किसी भी प्रकारकी उच्चकोटिकी रचना कर सके, और उसकी अनेकों ऐसी पंक्तियाँ हैं जो चिरकाल तक अमर रहेंगीं और जिन्हें गुनगुनाकर ही तड़पता हृदय शान्तिकी निःश्वास लेगा। हृदयसे निकली हुई ध्वनि ही हृदयको छूती है। अनूपमें भावुकता है परन्तु एक गहरी भावुकता है, सस्ती भावुकता नहीं। उस भावुकतामें सरलतासे उद्वेलन नहीं हो सकता, परन्तु जब एक बार उसमें तरंगें उठ जाती हैं तो वे एक अनोखा दृश्य, एक अमर चित्र दिखाए बिना शान्त नहीं होतीं।

अतएव जब कविकी भावुकतामें कुछ उद्वेलन होने लगता है तब अपने भावोंके सागरको गहराई तक उद्वेलित करनेके लिए,—अपनी अनुभूतिको पूर्णतया जगानेका वह प्रयत्न करता है और उसके लिए प्रारम्भसे ही वह अनुरूप वातावरण बनाने लगता है। यही कारण है कि प्रायः अनूपकी प्रत्येक कविता प्रकृति या तत्स्थानीय वातावरणके वर्णनसे ही प्रारम्भ होती है। और जबतक कवि इस वर्णनकी समाप्ति करता है उसकी अनुभूति जग उठती है और तब काव्य-धाराका प्रवाह वेगके साथ बह निकलता है। उस काव्य-धाराकी सतहपर कल्पना-चित्र स्थिर हो जाते हैं और एक तरल सरलताका अनुभव होने लगता है। जैसे—

(१) " देख निज जीवन-रहस्य अपनेमें छिपा
हँस पड़ते हो कभी बोल भी दिया करो । "

(२) " ओझल दृगोंसे रतनाकरके आकरकी
गोलकमें डोलते अमोलक रतनसे ।
देखा न किसीने उगे, फूले, मुरझाये कब
बीहड़ विजनके सुवासित सुमन-से । "

जब वर्णन करते समय कविका काव्योद्वेग अपनी चरम सीमापर पहुँचता है तो उसकी गति धारावाहिक रूपसे प्रसन्न और गम्भीर पदावलीके साथ चलती है तथा उसके वर्णनमें स्वाभाविक किन्तु सरल भाव आ जाता है; और तब उसके काव्यमें आलंकारिक गुणसे भी वह ऊँचा चमत्कार आ जाता है जो स्वभावोक्तिका सहचर है । देखिए—

(१) " फिर न मिलेगा कभी खेलना न छेड़ो इसे
बालक अभी है कुछ और खेल लेने दो । "

(२) " सोये हुए तुझको जगाना एक वीरता थी
जागे हुए तुझको सुलाना एक काम था । "

कविने प्रकृति एवं वातावरणका वर्णन कर अपनी अनुभूतिको जगानेका सफल प्रयत्न किया है किन्तु वर्णन करते समय भी उसने स्वाभाविकताको नहीं भुलाया। प्रकृतिके पर्यवेक्षणमें सत्यता और कोमलता है, और साथ ही उसमें यह भी शक्ति है कि जो कुछ वह देखता हो उसको एक समृद्ध भाषामें प्रकट कर सके। अनूपके प्रकृति-वर्णन हिन्दी साहित्यमें अनूठे हैं और उनका स्थान किसी भी अन्य कविसे कम नहीं है । एक उदाहरण लीजिए—

" शाखामृग शाखियोंपै शाखामृगियोंके संग
कुछ सुनते-से कान ऊँचे किये बैठे हैं ।
अमित अभीति-से अभंग-ग्रीव शावकोंको
स-मुद विहंग कोटरोंमें लिये बैठे हैं । "

सुननेके लिए कान ऊँचे कर देना, बन्दरोंका स्वाभाविक धर्म है। सभीत पक्षी अपनी गर्दन टेढ़ी कर लेता है ।

कविकी पैनी दृष्टिके और भी उदाहरण देखिए —

(१) " राई-लोन वारते हैं चंक्रम तितलियोंके,
चक्र चंचरीकोंके निछावर फिराते हैं । "

(२) " मानों जलयानके वितल पृष्ठ-भाग-मध्य
आता चला फेन पीत पिंड-सा उबलता । "

(४) " एक बार और चरमाचला चितापै आज
दग्ध हुआ सूर्य, संध्या सुंदरी सती हुई । "

(५) " तुम थे, प्रसून ! महापथके पथिक तुम्हें
हिमकी चितापै हाय किसने जला दिया ? "

कविता एक भाषा-प्रधान कला है । प्रत्येक कवि यही प्रयत्न करता है कि अपने अनुभवोंको, अपनी इन्द्रियानुभूतियोंको भाषाके साँचेमें ढाल दे । जो कुछ वह स्वयं देखता-सुनता है, अनुभव या कल्पना करता है उसे दूसरोंके लिए सुचारु सुस्पष्ट ढंगसे शब्दोंद्वारा प्रगट करनेकी चेष्टा करता है । इसीमें उसको लोकोत्तर आनन्द आता है जो सब कलाकारोंकी एकमात्र वस्तु होती है । उस कविकी अनुभूतिकी तीव्रता एवं उस अनुभूतिको व्यक्त करनेकी सफलतापर ही उस कविकी महत्ता एवं उसका ठीक स्थान निर्धारित किया जा सकता है । इसके लिए भावुकताके साथ ही साथ भाषाकी भी आवश्यकता है । 'सिद्धार्थ' के महाकविके लिए यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि उसका भाषापर पूर्ण अधिकार है । उसे कहीं भी शब्दोंकी कमीका अनुभव नहीं होता । यही कारण है जो घनाक्षरी छंदमें इतनी सफलता मिली है ।

भाषा, छंद और आदर्शकी दृष्टिसे अनूपजीकी गणना हिन्दीके क्लासिक या रीति-प्रधान कवियोंमें होनी चाहिए । उस परंपराके वह अन्तिम महान् कवि हैं । परन्तु उनके विषय और स्थानके प्रदर्शन एवं निरूपणके आधारपर हमें उनकी गणना हिन्दीके रोमेण्टिक कवियोंमें भी करना पड़ती है । रोमेण्टिक कवियोंको दो श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं; प्रथम श्रेणीमें वे कवि आते हैं जिनकी कृतियोंमें कल्पनापूर्ण, अनुभूतिसिक्त रंग-बिरंगे चित्र एवं भावनाओंका ही पूर्ण प्राधान्य रहता है । रहस्यपूर्ण एवं इन्द्रियातीत कल्पना उनको आकृष्ट करती है । विगत भूत एवं आधिभौतिक ही उनकी इस भावनाको संतुष्ट करता है । अँग्रेज़ी भाषामें

कीट्स् और कोलरिज इस प्रकारके कवि हैं। दूसरी श्रेणीके वे रोमेण्टिक कवि होते हैं जिन्हें हम प्रकृतिके कवि भी कह सकते हैं। अपने आसपास रहनेवाले, नित्य प्रतिके जीवनके संसर्गमें आनेवाले साधारण व्यक्तियों और प्राकृतिक दृश्योंको लेकर कविता करनेमें उन्हें आनंद आता है। अँग्रेजी भाषाके कवि वर्डस्वर्थकी गणना इस दूसरी कक्षामें की जाती है। अनूपजीने भी 'मेरा ग्राम' लिखकर इस प्रकारकी कविता करनेका प्रयत्न किया है किन्तु कवि न तो भूतकालीन नरेशों और उनके द्वारा बनाई हुई प्राकार-परिखाओंको भूल सका और न वह वर्तमान राजनीतिक हलचलोंको तथा ग्राम-सुधार-आन्दोलनको ही एक ओर रख सका; ग्रामकी सुन्दरता देखते देखते वह उसकी आर्थिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, तथा नैतिक समस्याओंमें उलझ गया।

अनूपजी कोरे प्रकृतिप्रिय कवि नहीं है। उनमें दोनों श्रेणीके गुण-दोषोंका सम्मिश्रण पाया जाता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि कविने प्राकृतिक वर्णनोंका सफलतापूर्वक चित्रण किया है परन्तु यह वर्णन उसके लिए कारण-मात्र है, उसकी अनुभूति जगानेका केवल साधन है; यही कारण है कि अनूपजीको प्रधानतया प्रथम श्रेणीका ही रोमेण्टिक कवि माना जा सकता है। क्योंकि, उनमें प्रकृति-प्रेम गौण रूपसे पाया जाता है और उनकी कल्पना-शक्ति उन्हें निश्चेष्ट रहकर अनुभूतिका आस्वादन नहीं करने देती।

जहाँ जहाँ कविने ऐसी सम्मिश्रित शैलीमें लिखनेका प्रयत्न किया है उसे पूरी सफलता मिली है। उसने प्रतिभाद्वारा उन सब विभिन्न प्रवृत्तियोंको इस प्रकार एकाकार कर दिया है कि वे सब सम्मिलित होकर एक विचित्र एकता, उससे भी विचित्र विभिन्नता उत्पन्न कर देती हैं जिससे उनके समूचे चित्रणमें वह सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है जो उसके विभिन्न अंशोंमें नहीं प्राप्त होता है। 'चित्तौड़-दर्शन' जैसी इनी गिनी कविताएँ ही ऐसी हैं कि उनके टुकड़े मूलसे अलग होकर भी अपनी सुन्दरता नहीं खोते।

कविका यह रोमाण्टिसिज़्म स्वाभाविकतासे दूर नहीं है। अपितु कविने स्वाभाविकता ही कल्पना और भावोद्वेगमें रंग कर एक परिवर्तित स्वरूपमें प्रस्तुत की है। हम पहले ही कह आये हैं कि कविद्वारा अंकित किये गए चित्र स्वाभाविक हैं और उसने उनका अच्छा उपयोग और चित्रण किया। कवि परिस्थितिकी आवश्यकताओंको पहचान कर आगे बढ़ता है और प्राकृतिक वर्णनोंका सहारा

लेकर अस्वाभाविकको भी सजीव और मूर्त्त बना देता है। वह उनको देखता है, अनुभव करता है और पाठकोंको उन्हें दिखाने एवं अनुभव करानेका प्रयत्न करता है।

कविके काव्यमें शक्ति है, स्वाभाविक प्रवाह है, और है वह सौन्दर्य जो कविताके लिए परमावश्यक है। अनूपजीकी प्रतिभा शक्तिशाली और पौरुष-प्रधान है। काव्यशैलीकी पूर्णता सर्वांशतः दो गुणोंसे मानी जाती है, भाषाका लचीलापन और उसकी सहज धारा-प्रावाहिकता। उनकी कविताओंमें हम उपर्युक्त दोनों गुणोंका समावेश पाते हैं। यद्यपि उनकी शब्दावली संस्कृत-प्रधान है और यदा कदा दुरूह भी हो जाती है, फिर भी साधारणतया छन्दका प्रवाह और भाषाकी गरिमा उन शब्दोंको यथास्थान बिठा देती है। कविको भी इसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता और न पाठकोंको ही उसकी कुछ अनुभूति होती है।

'शंघाईमें शान्ति' में इन दोनों गुणोंका यथेष्ट सम्मान किया गया है, देखिए—

"उड़े बैंकके वृन्द, उड़े विद्यालय सारे,
उड़े विशाल निकेत, उड़े पुर-ग्राम बिचारे,
उड़े धामके धाम, उड़े जन-प्राण-पखेरू
शोणित ऐसा बहा, बही द्रव होकर गेरू।"

आदि पद उक्त विशेषताओंके उदाहरण हैं। कविताका प्रवाह और उसकी वर्णनशैली इतनी सशक्त है कि पाठकोंको अपने साथ बहा ले जाती है। इसका पूरा पता हमको तब लगता है जब हम एक साँसमें सारी कविता पढ़ जाते हैं और उसको समाप्त करके पुनः एक गहरी साँस लेते हैं।

परन्तु सभी कविताओंके विषयमें ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कविमें आलंकारिक-प्रवृति प्रचुरतासे देख पड़ती है। कवि जो कुछ लिखता है उसपर अलंकारोंका आवरण या आलंकारिक चमत्कारका रंग चढ़ा देता है। काव्य-चित्र अलंकारके चौखटेमें कस दिया जाता है। यद्यपि ऐसे स्थल बड़ी प्रचुर संख्यामें नहीं हैं परन्तु जो हैं वे कविकी साहित्यिक विद्वत्ताके उदाहरण कहे जा सकते हैं। उनको पढ़कर हमको अनुभव होने लगता है कि कविको अपने भावों और भाषा-पर पर्याप्त प्रभुत्व प्राप्त है। कविकी कल्पना और उस कल्पनाको आलंकारिक पूर्णता देनेकी शक्ति देखते ही बन आती है। कहीं कहींपर अलंकारोंके प्राधान्यके कारण काव्य-प्रवाह भार-युक्त और केवल प्रयत्नपूर्ण ही नहीं ज्ञात

होता वरन् कविके प्रयत्नका ज्ञान पाठकोंके विचारोंको उसकी सफलतासे दूर फेंक देता है। ऐसे स्थलोंपर आन्तरिक अनुभूतिका अभाव स्पष्ट हो जाता है और हम केवल कविके परिश्रमकी प्रशंसा करने लगते हैं।

इस संग्रहमें ऐसे स्थल भी यत्र तत्र पाये जाते हैं जहाँ अलंकार-प्रधान काव्यके सभी दोष स्पष्ट देख पड़ते हैं। वहाँ वह अलंकार-विधान अलंकार न रहकर कोरा चमत्कार स्वरूप ही हो जाता है। अलंकार-विधान कैसा ही उच्च क्यों न हो यदि वह अनुभूतिविहीन हो, साथ ही अत्यधिक मात्रामें हो तो वह सहृदयोंको सुचारु प्रतीत नहीं होता और ऐसा काव्य द्वितीय श्रेणीका हो जाता है।

इस बातपर कभी दो मत नहीं हो सकते कि कविने अपने काव्यमें सीधी साधी भाषाको छोड़कर आलंकारिक भाषाको ही अपनाया है। इसके कई कारण हो सकते हैं। कविमें कल्पनाका प्राधान्य उसको आलंकारिक भाषाकी ओर बलात् ले जाता है। कल्पनाकी उड़ान उसको अनेकानेक अनूठी उक्तियाँ और उपमाएँ सुझाती है। ऐसे समयमें कल्पनाके सहारे चुने हुए शब्दोंद्वारा एक शब्द-चित्र बनानेमें ही कवि एकाग्रचित्त हो जाता है और इससे उसकी अनुभूति गौणता प्राप्त कर लेती है। किन्तु जहाँ कविकी कल्पना अनुभूतिसे प्राणित होकर चली है वहाँ उसकी छवि देखते ही बन आती है, वहाँ अलंकार काव्यकी सुन्दरता बढ़ा देते हैं और कवि उन अलंकारोंमें ही आवश्यक रंग-रूप प्राप्त करता है।

(१) " किन्तु काम-करि-केसरीके यही काल
इन्हें काम-करि-केसरी महेश क्यों न प्यारे हों। "

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास, अथवा यों कहें अनुप्रास और परम्परित रूपकके संयोगने भर्तृहरिके एक प्रसिद्ध नामको अधिक चमत्कृत कर दिया है।

(२) " मानों चारों ओर मन्त्र-लकुटी घुमाती हुई
कोई अभिचारिणी धराको सुप्त करती। "

उत्प्रेक्षा बिलकुल नई है। हिन्दी या संस्कृत कवियोंने सन्ध्याका ऐसा चित्र अंकित नहीं किया।

(३) " सार-भरी शोभा थी बहार-भरी वसुधामें
भार-भरी बाग अन्धकार-भरी यामिनी। "

अनुप्रासकी सहायतासे नैसर्गिक चित्र एक क्रमसे अंकित किया गया है।

(४) " चंचरीक-वृन्दमें गजेन्द्र ही समाया, या कि
गज-गंडमें ही भृंग-मण्डली समाई है।"

'संदेह' की सहायतासे 'मीलित' अलंकारको कितनी सुंदरतासे प्रौढ़ता प्रदान की गई है।

(५) " तो फिर कचोंकी, लोचनोंकी, मंजु आननकी
कटिकी, करोंकी, जघनोंकी होती समता।"

'यथासंख्य' अलंकारका यह एक सुन्दर उदाहरण है। छः वस्तुओंका यथासंख्य व्यापार एक साथ संगठित किया गया है। पाठकगण इसी प्रकारके बहुत-से स्थल इस संग्रहमें देखेंगे।

अनूपजीकी कवितामें कुछ ऐसी भी उपमाएँ मिलती हैं जो हिन्दी-संसारके लिए सर्वथा नवीन युक्तियाँ कही जा सकती हैं। उदाहरणार्थ—

(१) " जैसे रजनीके गतिशील बननेसे कहीं
गिरते गगनसे सितारे टूट टूट कर।"

कितनी अच्छी सांगोपांग और नवीन उपमा है।

(२) नाव जब पानीमें चलती है तो उसके पीछे पतवारके पास एक भौंर-सा उठने लगता है। उस स्थानपर पानीका तल भौंरके कारण कुछ नीचा हो जाता है और उसमें कभी कभी फेनका वृत्त चक्कर खाने लगता है—

" जैसे जलयानके वितल पृष्ठ-भाग-मध्य
आता चला फेन पीत पिंड-सा उबलता।"

एक नवीन कल्पना है। ऐसी उपमाएँ अपनी नवीनताके कारण हिन्दी साहित्यमें कम दृष्टिगोचर होती हैं।

अनूपजी पूर्णतया इस युगके प्रतिनिधि कवि हैं। इस आलंकारिक भाषा और कल्पना-चित्रोंके बाहुल्यमें वे अपने देशकी समकालीन राजनीतिक परिस्थितियोंको भूलते नहीं हैं। सांस्कृतिक संघर्षके साथ ही साथ राजनीतिक कशमकशका भी पूरा प्रतिबिम्ब उनकी कवितामें देखनेको मिलता है। अपने कविजीवनके प्रारम्भमें ही उन्होंने सन् १९२१ के सनसनीपूर्ण और उत्तेजक दिन देखे हैं और उन्हीं दिनोंकी प्रेरणासे अभिभूत होकर उन्होंने उन दिनों इतनी ओजस्वी राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं कि वे 'वर्तमान भूषण' कहलाये।

परन्तु आजकल कविने प्रचारके लिए छिछली तात्कालिक और उत्तेजनापूर्ण कृतियोंसे मुँह मोड़ लिया है, किन्तु प्रारम्भिक युगकी अदम्य अनुभूति उसपर गहरा रंग छोड़ गई है और कवि अपनी ओजपूर्ण कल्पनामय शब्दावलीद्वारा स्वतंत्रताका स्वागत करने बढ़ा है। महात्मा गाँधीका 'दंडी-प्रयाण' अब इतिहासकी एक घटना हो गई है। इस अमर व्यक्तिकी जीवनीका एक पृष्ठ अपनी कवितामें वर्णित कर कविने अपनी वाणीको पवित्र किया है। अहिंसाके उस अवतारके आदर्शोंकी व्याख्या करते करते कवि चौंक पड़ता है और सुदूर पूर्वमें उसी अहिंसावादके सर्वप्रथम आचार्य भगवान् बुद्धके अनुयायियोंकी हिंसा-लीलाका दृश्य उसकी आँखोंके सामने नाचने लगता है। अंतमें जब पाठक शंघाईकी उस मृत्यु-पूर्ण बीभत्स शान्तिकी ओर अन्तिम दृष्टि डालकर एक गहर निःश्वास लेता है और इस 'सुमनांजलि' को एक ओर रख देता है तब भी उसकी आँखोंके सामने नाशका वह प्रचण्ड स्वरूप बड़ी देरतक घूमता रहता है।

अब अधिक नहीं। हम भी अब पाठकोंकी शान्तिको अधिक भंग करना नहीं चाहते। अनूपजीकी मानसिक पृष्ठ-भूमि, उनकी काव्य-धारा एवं कल्पना-प्रवाहकी प्रगतिका कुछ निर्देश करना मात्र हमारा उद्देश्य था और हमने जितने पद उदा-हरणार्थ दिये हैं उनको ही हम ग्रन्थमें सर्वश्रेष्ठ मानते हैं यह बात नहीं है। वे तो इस पुस्तकमें प्रकाशित कई सुंदर उक्तियोंमेंसे कुछ हैं। अनूपजीके काव्यके विशेष गुण-दोषोंकी विवेचनाका कार्य हम साहित्यिक समालोचकों और सहृदय पाठकोंपर ही छोड़ते हैं। व्यवहारमें अपनी सारी ऊपरी नम्रताको प्रदर्शित करते हुए भी प्रत्येक कवि अपने हृदयमें यही विश्वास रखता है कि उसकी कृतियाँ विश्व-काव्यमें यदि न भी स्थान पा सकेंगीं तो कमसे कम अमर अवश्य होवेंगीं। यदि अनूपजीके हृदयमें ऐसा विश्वास हो तो स्वाभाविक ही होगा, परन्तु यह तो समय ही बता सकेगा कि उनकी कितनी और कौन-सी कृतियाँ स्थायी साहित्यकी अमर निधि बनेंगीं।

रघुवीर-निवास, सीतामऊ
१८-९-१९३९

रघुवीरसिंह
रघुनाथसिंह

परिचय

आजकल हिन्दी कविताका प्रवाह कई धाराओंमें जारी है। पुरानी रीति-कालकी धाराका वेग इस समय कम है फिर भी प्रवाहकी गति सर्वथा अवरुद्ध नहीं हुई है। रीति-कालकी कविता साहित्य-शास्त्रमें निर्धारित नियमोंका पालन करती हुई चलती है। नियमोंकी पूजा करना तत्कालीन साहित्य-संसारमें एक प्रकारका साहित्यिक सदाचार समझा जाता था। इस सदाचारकी अवहेलना साहित्यिक निन्दाका कारण बनती थी। पर, धीरे धीरे नियम-पूजाका प्रभाव कम पड़ता गया। इधर कुछ समयसे तो इसके विरुद्ध भीषण प्रतिक्रियाका प्रादुर्भाव हुआ है और साहित्यिकोंका एक दल तो रीतिकालकी इन साहित्यिक रस्मोंका घोर विरोधी है। नियम-पूजाको वह घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा है।

आजसे कई सौ बरस पहले हिन्दी-कविता व्यापक साहित्यिक व्रज-भाषामें होने लगी थी। यह क्रम बराबर जोर पकड़ता गया था। पर इधर वर्तमान पीढ़ीमें कविता भी उसी भाषामें होने लगी जिसमें गद्य लिखा जाता था। गद्यमें प्रयुक्त होनेवाली भाषा 'खड़ी बोली' के नामसे प्रसिद्ध है। खड़ी बोलीके अनेक कवियोंने हिन्दी कविताकी पुरानी नियम-पूजा-परिपाटीकी सर्वथा उपेक्षा की है, परंतु दो-चार ऐसे भी हैं जो साहित्य-शास्त्रका शासन स्वेच्छापूर्वक मानते हैं यद्यपि जिन विचारोंको उन्होंने अपना रखा है वे वर्तमान रुचि, प्रगति और वातावरणके अनुकूल हैं।

श्रीयुत अनूपशर्माजीकी हिन्दी साहित्य-संसारमें अच्छी ख्याति है। उनकी रचनाओंकी लोकप्रियता निर्विवाद है। हिन्दीके वर्तमान कवियोंकी पंक्तिमें उनका आदरणीय स्थान है। उनकी कविताकी यह प्रतिष्ठा संयोग अथवा प्रचारके बलपर नहीं हुई है, कारणवश अयोग्यताको योग्यताका रूप नहीं मिला है, वरन् यथार्थ गुणोंके आदरमें ही अनूपजीकी रचनाओंकी सफलताका रहस्य वर्तमान है। अनूपजीकी कविता खड़ी बोलीमें है, वर्तमान वातावरणके अनुकूल है, तथैव पुराने काव्यशास्त्रके शासनके प्रतिकूल भी नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक एक संग्रह-ग्रंथ है। इसमें समय-समयपर लिखी जानेवाली अनूपजीकी सोलह कविताओंका संग्रह है। एक प्रकीर्ण पद्यका परिच्छेद भी सम्मिलित है। शारदावतरणको छोड़कर और सभी कविताएँ काफ़ी बड़ी हैं। उनका आकार न तो इतना विस्तृत है कि पढ़ते पढ़ते चित्त ऊब जाय और न ऐसा छोटा कि वर्ण्य विषयका वर्णन अतृप्तिकर हो। नैसर्गिक सुघराईसे लेकर शृंगार-संबंधी वर्णनों तकका समावेश अनूपजीने वर्तमान रुचिको ध्यानमें रखते हुए सुन्दरता और सफलताके साथ किया है। उनकी रचनाओंमें भिन्न भिन्न रसोंका सुस्वादु परिपाक है। वीररसका सर्वस्व ओज अनूपजीकी भाषामें ख़ूब फबता है। अतीत स्मृतियोंका चित्रण अनूपजीने बड़ा सुंदर किया है।

इस छोटेसे परिचयमें किसी कविता-विशेषकी समीक्षा कर सकना संभव नहीं है, इसलिए उनकी समग्र रचनाओंके पढ़नेके बाद जो विशेषताएँ ध्यान आकृष्ट करती हैं, उन्हींका कुछ अस्पष्ट सा उल्लेख यहाँपर किया जाता है।

संस्कृतके पुराने कवियोंकी वर्णन-शैलीको श्रीयुत पं० अयोध्यासिंहजी हरिऔधने 'प्रिय-प्रवास' में सफलतापूर्वक अपनाया है। अनूपजीपर 'हरिऔध'की शैलीका स्पष्ट प्रभाव है। वे भी वर्णन-प्रधान कवि हैं। उनकी भाषामें सुंदर प्रवाह होते हुए भी कहीं कहीं भाषाकी गति अत्यन्त प्रखर है। ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं, फिर भी जहाँ कहीं ऐसे प्रखर प्रवाहके आवर्त पड़ गए हैं वहाँपर शब्दोंका घटाटोप मस्तिष्कपर कुछ अधिक भार डालता है। इन आवर्तोंके अतिरिक्त समग्र प्रवाह बहुत सुंदर, शीतल और सुखद है।

अनूपजी पुराने काव्य-शास्त्रके शासनको माननेवाले कवि हैं। उनकी रचनाओंमें पूर्ववर्ती कवियोंकी प्रचलित रूढ़ियोंका बहिष्कार नहीं है। उनकी कृतिमें यह उद्योग नहीं दिखलाई पड़ता है कि पुराने कवियोंके भावोंकी

छाया न पड़ने पावे। अनूपजीने निस्संकोच पुराने भावोंसे भी लाभ उठाया है। काव्य-शास्त्रकी रीतियोंका अनूप-काव्यमें आदर है और इसीलिए पुराने और नए दोनों प्रकारके कविता-प्रेमियोंको अनूप-रचनाएँ संतोष प्रदान करती हैं। अनूपजीकी कविता प्रायः एकरस है। उनकी प्रत्येक उक्तिमें कुछ न कुछ चमत्कारकी बात मौजूद पाई जाती है। इस संग्रहमें प्राप्त उनके कुछ छंद ऐसे अच्छे बन पड़े हैं कि उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। अनूपजीकी रचनामें अभिनव विचारोंका भी समावेश है, फिर भी, प्राचीन कविता-परंपराकी उन्होंने कौशलके साथ रक्षा की है। नूतन और पुरातनका अनूपजीकी कवितामें अनूप समन्वय है। चोज और ऊँची उड़ान कविकी प्रतिभाकी विशालताके परिचायक हैं। अनूपजीकी अधिकांश कविता अभिधा-प्रधान है और आवश्यक अलंकारोंके धारण करनेमें उसको कुछ भी झिझक नहीं है।

इस सुंदर संग्रहको पाकर हिंदी-संसार अनूपजीके और अधिक निकट पहुँच जायगा, उनके प्रति स्नेह और आदरकी परिधि और भी व्यापिनी और विशाल हो जायगी।—ऐसा हमारा विश्वास है।

इस परिचयके लेखक और प्रस्तुत संग्रहके रचयिता दोनों एक ही प्रान्तके निवासी हैं। दोनोंमें हिन्दी प्रेमके नाते बहुत दिनोंसे सौहार्द भाव है। ऐसी दशामें एक दूसरेकी कृतिको जिस स्नेह और ममतासे देखेगा वह नितांत स्वाभाविक है। स्नेह और ममता पक्षपातके प्रधान आकर्षण हैं। पक्षपातका प्रादुर्भाव न्यायके सम्मानमें न्यूनता उत्पन्न करता है। इसी कारण अब यह लेखक अनूपजीकी कविताकी अधिक स्तुति नहीं करना चाहता। उसका अन्तिम निवेदन यही है कि अनूपजीकी कविता अत्यन्त मनोहारिणी, सरस, सालंकार, भावमयी एवं ओजमयी है। अनूपजीका आदर करके हिन्दी-संसार गुणग्राहकताका परिचय दे रहा है। ईश्वर करे, अनूपजीका काव्य-यशो-सौरभ और भी दूर दूर तक फैले। तथास्तु

गँधौली
देवशयनी
१९९६ वि०

—कृष्णविहारी मिश्र

कविताओंका स्पष्टीकरण

१ शारदावतरण (पौष, १९८६ विक्रम)

फैज़ाबाद कवि-सम्मेलनके समय उपस्थित हुए कवियोंको स्व० रत्नाकरजीने अपने निवास-स्थान अयोध्यामें आमंत्रित किया था। उस कवि-गोष्ठीमें रत्नाकरजीने जो छंद सुनाए उसमें उनका वह प्रसिद्ध छंद भी था जो "आवत गिरा है रतनाकरै निवाजनकौं, आनँद-तरँग अँग थहरति आवै है," से प्रारंभ होता है। उस छन्दने कविके ऊपर इतना प्रभाव डाला कि वहाँसे बिसवाँको लौटते ही उसने यह कविता लिख डाली। इसमें केवल 'आवत गिरा है की व्याख्या की गई है। दूसरी बार लखनऊमें रत्नाकरजीसे मिलनेपर कविने जब यह कविता सुनाई तो नव-युवक कवियोंको प्रोत्साहन देनेमें सिद्ध-हस्त होनेके कारण उन्होंने कविताकी प्रशंसा करते हुए कहा, "भाई, चाहे मेरे पास न आई हो लेकिन तुम्हारे पास तो अवश्य आई। मैं चाहता हूँ, हिन्दी-संसारमें तुम अपने अंतिम छंदको सार्थक कर सको।"

२ चित्तौड़-दर्शन (ज्येष्ठ १९८७ वि०)

चितौड़गढ़ ऐतिहासिकोंका एक तीर्थ-स्थान है। जिस गढ़में तीन-तीन बार जौहरकी वेदियाँ रची गई हों, जिसका इतिहास इतना रोमांचकारी हो, जिसपर

'जायसी'से लेकर आज तकके हिन्दी-कवियोंने अपनी लेखनी पवित्र की हो, उसके महत्त्वका क्या कहना ! प्रस्तुत कवितामें कवि एक प्रदर्शककी हैसियतसे अपने किसी मित्रको चित्तौड़का दर्शन कराता है और उसे क्रमशः गढ़के बाहरसे पद्मिनीके महल तक ले जाता है। वहाँसे लौटाकर महाराना कुंभाके स्तूपपर चढ़-कर भूत वैभवकी स्मृतिमें दीर्घ निःश्वास छोड़ता है और फिर सारे दृश्यपर सन्ध्याकी यवनिका गिर पड़ती है। कविताके गर्भांगमें जौहरका दृश्य भी खींचा गया है जहाँ कविताका प्रवाह अपनी चरम सीमापर पहुँचता है।

३ हरिश्चन्द्र-घाट (फाल्गुन १९८७)

कवि जब काशीमें रहता था तब एक बार गंगामें बाढ़ आई थी। उसकी नाव रातको साढ़े आठ बजे रामनगरकी ओरसे आकर काशी-तटपर लगी। वह दृश्य कविके नेत्रोंमें तब तक नाचता ही रहा जब तक कि वह इस कविताके रूपमें मूर्त्त न हो पाया। संध्याके समय गंगाका तट, श्मशानकी भयंकरता कविके हृदयमें विविध भाव—जीवनसे मरण तकके—उत्पन्न करती है। यद्यपि यह सत्य है कि साहित्यिक दृष्टिसे 'चिता'की अपेक्षा 'कब्र' पर अधिक मनोभाव उठ सकते हैं परन्तु कविने अपनी संस्कृति-रक्षा करते हुए श्मशान और चितापर भी कुछ कहनेका साहस किया है। काशीकी श्मशान-भूमिका कोई भी चित्र शैव्या-हरिश्चन्द्र-परिच्छेदके बिना अपूर्ण ही है। अतः उसका भी निर्देश करके कवि जीवन-मरणके दुःखद प्रसंगसे विश्राम लेकर अपने प्रातःकार्यमें प्रवृत्त हो जाता है।

४ ताजमहल (अश्विन १९८८ वि०)

ताज-महल संसार-भरमें प्रसिद्ध होनेके कारण बड़े-बड़े कवियोंकी लेखनीका विषय रहा है। विश्वकवि रवीन्द्रने भी इस विषयको अपनाया है। कविने शरत्पूर्णिमाकी मध्यरात्रिको इस विशाल मृत्यु-भवनको देखा। मध्य-रात्रिका वर्णन प्रारंभ करके कवि इस भवनको, तथा इसमें सोती हुई उस परम सुंदरी रमणीको अपनी काव्याञ्जलि प्रदान करके इसके सामूहिक सौन्दर्य्यपर दृष्टि-पात करता है। अन्तमें वह जिस सिद्धान्तपर पहुँचता है वह एक ही छंदमें गागरमें सागरकी तरह भर दिया गया है। शृंगार-रसके आलंबनपर यह इमारत बनी थी और उसीके आधारपर प्रस्तुत कविताका प्रासाद खड़ा किया गया है। यहाँ संयोग और वियोगका दृश्य ताज-महलके आकारमें एक ही स्थानपर स्थित हो गया है।

५ भर्तृहरिकी गुफा (कार्तिक १९८९ वि०)

उज्जैनके पास इस नामकी एक गुफा है। यद्यपि इस समय उसका विगत स्वरूप कुछ भी नहीं रह गया है और उसकी दर्शनीयता भी नष्ट हो गई है परन्तु कविने उस समयकी गुफाका वर्णन किया है जिस समय स्वयं भर्तृहरि यहाँपर योग-साधना करते रहे होंगे। प्रारंभमें उनके आश्रमका वर्णन करके वह उनकी स्थिति तथा उनके उपदेशोंको अंकित करता है। साधारणतया बहुतसे भाव उन्हींकी शतक-त्रयीमेंसे लिये गए हैं लेकिन कविने उनको अपनी शब्दावलीमें योगिराजके जीवनपर ही घटा दिया है। यही इस कविताकी विशेषता है। किसी कविकी कविता उसके आत्म-स्वरूप ही हुआ करती है। इस सिद्धान्तका व्यावहारिक प्रतिपादन ही इस काव्यकी आत्मा है।

६ मार्तण्ड-मण्डल (वैशाख १९९० वि०)

शरत्कालीन प्रभातका कविने सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण करके इस कविताका श्रीगणेश किया था। प्रभात-वर्णनको अधिक चमत्कार-पूर्ण बनानेके लिए इसमें उसने अलंकारोंका मुक्तहस्त प्रयोग किया है। सूर्य्योदयके पहले या पीछे अथवा सूर्योदयके समय पूर्वाकाशकी क्या अवस्था होती है, सूर्य्य किस प्रकार अंधकारपर उत्तरोत्तर विजय पाता है, आदि बातें यद्यपि सब लोगोंके लिए प्रति दिन देखते रहनेके कारण परिचित ही हैं तथापि, कविने अपनी प्रतिभाके सहारे जो दृश्य उपस्थित किया है, पाठकगण उसकी सूक्ष्मताका अनुभव करेंगे। हरिद्वारका प्रभातकालीन दृश्य कविके मस्तिष्कपर एक अमिट छाप छोड़ गया है।

७ गजेन्द्र-मोक्ष (भाद्र १९९०)

इस विषयपर हिन्दी-साहित्यमें मतिराम, पद्माकर, रत्नाकर आदिने अनेक फुटकर छंद लिखे हैं। कविने यहाँ इस प्रसंगका धारावाहिक वर्णन किया है। श्रीमद्भागवतमें यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। रूपकमें यह एक गृहस्थकी मृत्युका दृश्य दिखाया गया है। जिन लोगोंने जंगली हाथियोंका जल-विहार देखा होगा वे इस कविताके वर्णनको भली भाँति समझ सकते हैं। जंगली हाथियोंका जल-विहार अत्यन्त मनोरंजक होता है। उसको देखकर कविको गजेन्द्रकी कथाका ध्यान आता है और उसका वह सांगोपांग वर्णन करता है।

८ मेरा ग्राम (फाल्गुन १९९१)

कविने यह पचीसी अपने गाँव (नबीनगर जिला सीतापुर) पर लिखी है। अवध प्रान्तके प्राकृतिक दृश्यसे प्रारंभ करके गाँवकी समृद्धिका चित्र अंकित करके, कवि उसके विगत वैभवपर बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि डालता है। अँग्रेज़ी राज्यके ज़ोर पकड़नेसे किस प्रकार भारतके गाँव बरबाद हुए, यह एक आँखोंदेखी बात है। कविने अपने बाल्य-कालके दृश्योंका भी चित्रण किया है और ग्रामीण सभ्यताका भी। ऐसी परिस्थितियाँ न्यूनाधिक रूपसे हमारे देहातमें सर्वत्र उपस्थित हैं जिनके कारण ग्रामोंकी मध्यकालीन शोभा नष्ट हो गई है। अन्तमें कवि अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और आशाओंके साथ इस करुण परिच्छेदको समाप्त कर देता है।

९ स्वतंत्रते ! स्वागत (अगहन, १९९१)

इस कवितामें कविने कल्पनासे विशेष काम लिया है। स्वदेशमें स्वतंत्रताका पदार्पण हो रहा है; यह मान कर वह उसका स्वागत करनेको उद्यत होता है। स्वतंत्रताका आगमन और उसके आगमनसे भूमिपर कैसी क्रान्ति मच जाती है, कैसी उथल-पुथल होने लगती है, आदिका वर्णन करके जब कवि उसको अपने सम्मुख स्वागतार्थ आवाहन करता है तो वह देवी प्रसन्न होकर सारे देशमें सुख-समृद्धिका केवल दृष्टि-पातमे ही वितरण करने लगती है। उसको संबोधित करके कवि निवेदन करता है कि उसके न होनेसे देशकी क्या दशा थी और अब उसके अवतरित हो जाने पर क्या परिवर्तन हो गया है। अन्तमें स्वतंत्रताकी स्तुति करके भारतमें निवास करनेकी प्रार्थनाके साथ कविता समाप्त होती है।

१० पुष्पलेखा (श्रावण १९९२)

इस कविताका आधार वसन्त-सुषमा है। इस प्राकृतिक समृद्धिमें सर्वश्रेष्ठ ऋतुकी आत्मा मूर्त्त-रूप धारण करती है। वह एक 'वनदेवी'के रूपमें अंकित की गई है। उसका जन्म किन प्राकृतिक परिस्थितियोंमें हुआ, वह किस तरह बढ़कर अपने यौवनको प्राप्त हुई और पुनः वह किस प्रकार उसी समृद्धिमें अंतर्हित हो गई, यही इस कविताकी भूमि है। प्राकृतिक शोभाका अतिशय और नैसर्गिक अतिरेक, दोनों ही समान रूपसे काव्य-प्रवाहके अन्तर्गत निहित हैं। सारी

कथा एक कल्पना मात्र है जिसकी स्थिति कवि-मास्तिष्कसे पृथक् कहीं नहीं है। प्रकृतिकी प्रियता ही वनदेवी बनकर निसर्ग-सदनमें संचरण कर रही है।

११ वंशी-विजय (माघ १९९२)

यह कविता 'छायावाद'का एक उदाहरण कही जा सकती है। ब्रह्माण्डमें निरंतर ही एक प्रकारका शब्द हो रहा है। आस्तिकोंका कथन है कि वही शब्द सार्थक होकर वेदमें अवतरित हुआ है। इस शब्दको अँग्रेज़ीमें Music of the Spheres कहते हैं। कविने उस शब्दको वंशी-ध्वनि मान लिया है। यह अनाहत नाद उसको अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। 'श्रीकृष्णकी वंशी'का बहुत कुछ साम्य लेकर कविने अपने हृद्गत भाव प्रकाशित किये हैं। इसी लिए वह उस वंशीको संबोधित करके, अपने भाव नाना प्रकारसे प्रकट करके, जो कुछ कह रहा है वह शब्दोंके अंतरंगमें निहित है।

१२ अमृत और विष (आश्विन १९९३ वि०)

संसारमें एक ओर जीवन और दूसरी ओर मरण अपना अपना कार्य एक-साथ कर रहे हैं। H. G. Wells के 'संसारका इतिहास'को पढ़कर कविको यह कविता लिखनेकी स्फूर्ति हुई। प्रागैतिहासिक युगकी सामग्री और पुरातत्व-विभागके अन्वेषणोंके आधारपर इस कविताका विषय खड़ा किया गया है। जिन लोगोंने उक्त पुस्तक नहीं पढ़ी, या जिनको पुरातत्त्वकी बातोंमें रुचि नहीं है, उनके लिए यह कविता कहीं कहीं अस्पष्ट हो गई है। फिर भी थोड़ेसे विस्तारमें संसारके विगत इतिहासका बहुत-कुछ सार भर दिया गया है।

१३ विराट-भ्रमण (चैत्र १९९४)

इस कवितामें कविने अपनी कल्पनासे विश्व-रूपका दर्शन किया है। आजतक प्राप्त खगोल-विज्ञानकी सामग्रीका अवलंबन लेकर कविने भूगोलके ऊपरके विस्तारका वर्णन किया है। वर्णन सर्वत्र कल्पनापर समाधारित है। जगदम्बिका-के रथका आकाशसे उतरना और उसी रथका पुनः आकाश-मार्गसे चलना एक अद्भुत दृश्य है। कविने इस कवितामें अपनी योग्यतानुसार अद्भुतका चित्रण किया है। आकाशका दृश्य बड़े विस्तारसे वर्णित किया गया है जिसका कुछ कुछ आभास आजकल वायुयानोंके यात्रियोंको अवश्य होता है।

१४ दंडी-प्रयाण (कार्तिक १९९४ वि०)

महात्मा गाँधीकी दंडी-यात्रा एक ऐतिहासिक घटना है। इतने बड़े महापुरुषका इतना बड़ा कार्य एक छोटी कवितामें नहीं आसकता था इसी लिए कविने यह कविता अन्य सभी कविताओंसे अधिक विस्तृत लिखी है। इस कविताका पूर्व-रूप, उसी समय जब गाँधीजीने प्रयाण किया था, लिखा गया था और प्रायः सभी प्रसिद्ध पत्रोंमें उद्धृत हुआ था। प्रस्तुत काव्य उसका विस्तार-मात्र है। कविने सत्याग्रह-संग्रामका विस्तारके साथ उपोद्‌घात किया है। सारी कविता यथार्थ भूमिपर अवलंबित है और कल्पनासे घटना-चक्र संचालित कर दिया गया है।

१५ प्रकीर्ण-पद्य (१९७८ से १९९६ तक)

ये पद्य समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशनार्थ लिखे गये थे जिनका संग्रह इस परिच्छेदमें कर दिया गया है।

१६ शंघाईमें शान्ति (आषाढ़ १९९५ वि०)

चीन-जापान-युद्धके प्रारंभिक दिनोंमें जापानने बम-वर्षा करके शंघाईको ध्वस्त कर दिया था। इस कवितामें आधुनिक रणक्षेत्रका वर्णन किया गया है। साथ ही साथ उन समस्याओंपर भी प्रकाश डाला है जो ऐसे युद्धोंके परिणाम-स्वरूप उपस्थित हो जाती हैं। अन्तमें भविष्यवाणीके साथ यह कविता समाप्त होती है।

अनुक्रमणिका

सुमनाञ्जलि